अरविंद घोष के चिंतन में धर्म की अवधारणा

*डॉ. शिखा अग्रवाल

भारतीय चिंतन में धर्म को विविध रूपों में प्रकट किया गया है। धर्म कर्तव्य को जन्म देता है। धर्म की रक्षा कर्तव्य की पूर्ति में है। कर्तव्य पूर्ति ही धर्म है। मुक्ति का मार्ग कर्म त्याग या निष्क्रियता नहीं है। महाभारत में व्यक्ति के स्वधर्म को पर्याप्त महत्वपूर्ण माना गया है। महाभारत एवं मनु ने स्वधर्म के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं, उन विचारों को कुछ सूत्रों[1.] में व्यवस्थित किया जा सकता है। अंग्रेजी शब्द 'रिलिजन' संकुचित अर्थ व्यक्त करता है, जबकि धर्म शब्द अति व्यापक अर्थ देता है। भारतीय धर्म केवल उपासना पद्धति तक ही सीमित नहीं रहा है। भारत में धर्म शब्द की उत्पत्ति ' धृ ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है - ' धारयति इति धर्म' अर्थात जिसके कारण लोक का, सृष्टि का धारण होता है अथवा जो लोक को धारण करता है, वो नियम धर्म है। उपासना परंपरा आदि से भिन्न जाति अथवा संप्रदाय के आचार, विधान, संविधान, नैतिक सदाचार, सत्कर्म, कर्तव्य, न्याय, पवित्रता, नीति आदि धर्म में आते हैं। महानारायण उपनिषद में कहा गया है कि धर्म इस संपूर्ण जगत की प्रतिष्ठा है। वैदिक काल में धर्म का स्वरूप ऋग्वेद में रित द्वारा व्यक्त किया गया। वेदों में 'रित' को संसार के विनयमनकारी शक्ति और सर्वोच्च कानून के रूप में माना गया है। धर्मन शब्द भी 'रित' का समानार्थक है[2.]

मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं- धैर्य, क्षमता, आत्म संयम, अस्तेय, पवित्रता, इंद्रियनिग्रह, पवित्र बुद्धि, उत्तम विद्या, और अक्रोध, यह मानव के गुण मात्र हैं जो धर्म के रूप में व्यक्त किए गए हैं। वैशेषिक दर्शन में धर्म को बाह्य एवं आंतरिक जगत के विशिष्ट स्वरूपों से संयुक्त माना गया है जबकि मीमांसा सूत्र में धर्म का निर्वचन कर्मकांड के अभिप्राय स्वरूप में किया गया। शंकराचार्य वैदिक धर्म में, 'ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या' को स्थापित करते हैं। गीता धर्म को कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत करती है।

भारतीय चिंतन में धर्म को धारण करने के रूप में लिया गया है। इसलिए यह भी माना गया कि जिस प्रकार मनुष्य धर्म धारण करता है उसी प्रकार राजा भी धर्म को धारण करता है। धर्म की अवधारणा को राजा से ऊपर माना गया। यह एक दार्शनिक सिद्धांत के रूप में है जो एक तरफ अमूर्त प्रभावशाली शक्ति के रूप में दिखता है तो दूसरी ओर इन सिद्धांतों के अनुरूप मूर्त कानून है जो जीवन - व्यवहार को संचालित करता है। भारत में धर्म के सनातन रूप को अत्यधिक महत्व दिया गया जिसका अर्थ है नित्य रहने वाला। इस धर्म में वही तत्व है जो नित्य है, सनातन है, देश काल के अनुसार यदि कोई बात इसमें दिखाई देती है तो वह नित्य का पोषण करने के लिए ही हो सकती है।[3.] भारत में धर्म को अंतिम सत्य तक पहुंचने का मार्ग माना गया है इसलिए ना तो इसमें किसी एकांतिक पद्धति पर जोर दिया गया और ना ही उसमें संबोधन वाचक नाम पर।

श्री अरविंद घोष के चिंतन में धर्म

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में धार्मिक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पश्चिम की

प्रेरणा वाले उदारवाद और अंग्रेजी राज्य के विरोध में एक सशक्त शक्ति के रूप में उभर कर आया। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद ने बंगाल में, पंजाब में स्वामी दयानंद सरस्वती ने, महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक ने भारतीय परंपरा के गौरव को स्थापित करते हुए पुनर्जागरण में नेतृत्व दिया। इस आंदोलन के परिणाम स्वरूप भारतीय युवाओं में गर्व की भावना लाने हेतु भारतीय धर्म और दर्शन की फिर से विवेचना की गई। श्री अरविंद घोष (1872 - 1950) के नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक चिंतन ने भारत के शिक्षित समाज पर गहरा प्रभाव डाला उनके ग्रंथ ' डिवाइन लाइफ' ने विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा। श्री अरविंद ने जहां ग्रीक और लैटिन साहित्य का विशद अध्ययन किया वही उपनिषदों और गीता का भी गंभीरता से अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे की प्राचीन भारत के इन ग्रंथो में तत्वज्ञान संबंधी समस्याओं का केवल बौद्धिक और तार्किक विवेचना ही नहीं है वरन गंभीर और गूढ़ अनुभूतियां हैं। उन पर रामकृष्णऔर विवेकानंद के वेदान्तिक समन्वय का प्रभाव पड़ा। 1905 से 1910 तक उन्होंने राजनीतिक कार्यों में अपना जीवन बिताया और हिंदू धर्म शास्त्रों का भी गहरा अध्ययन किया। वे प्राचीन वेदांत और आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक दर्शन का समन्वय करना चाहते थे।

श्री अरविंद ने पुनर्जागरण के विचार द्वारा भारत के राष्ट्रीय गौरव और हिंदू धर्म की महानता का संदेश दिया। भारत की प्राचीन आत्मा, आदर्श एवं पद्धतियों का पुनर्जागरण चाहते थे।[4.] पश्चिम के योग्य विचारों को अपनाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी लेकिन पश्चिम का अंधानुकरण उनको स्वीकार नहीं था। उनका आग्रह केवल यही था कि हम ईश्वर के विधान में निष्ठा रखते हुए भारतीय बने रहे। हम जो भी पश्चिम से ग्रहण करें वह एक भारतीय के रूप में ही करें अपना अस्तित्व विस्मृत ना कर बैठे।[5.] अरविंद घोष हिंदू और इस्लाम, दोनों धर्म को राजनीतिक जीवन के लिए जागृत करना चाहते थे। भारत के अधिकांश दार्शनिक, सूक्ष्म संप्रत्ययवादियों की तरह ही, अरविंद भी इसी विचारधारा के थे हालांकि उन्होंने तत्वज्ञान में ऐसा मौलिक पक्ष भी दिया है जो पारंपरिक हिंदू दर्शन प्रणालियों में नहीं है। उनका कहना था हमारे दर्शनशास्त्र के अनुसार सूक्ष्म संप्रत्यय ही भौतिक तत्व के रूप में प्रकट होते हैं और अमूर्त समप्रत्यय ही मूर्त रूप धारण करते हैं। यह विचार मानवीय जीवन में सच है, राजनीति में सच है और राष्ट्र के जीवन और विकास के विषय में भी सच है। अमूर्त संप्रत्यय ही स्थूल भौतिक संस्थाओं को मूर्त रूप देता है।[6.] यह एक प्राचीन विचारधारा है जिसे पश्चिम में प्लेटो और उससे भी अनेक सदियों पहले भारत के वेदकालीन दृष्टाओं ने प्रचारित किया था। श्री अरविंद ने अपने आध्यात्मिक विकास के सिद्धांत में कहा है जब निरपेक्ष और परम पुरुष ब्रह्म की तुलनातम और घनीभूत जड़, प्रकृति से मिली तब सृष्टि का आरंभ हुआ। सृष्टि के उस आरंभ काल से ही, जड़ प्रकृति के जलावर्त में निमग्न हुए जीव, विभिन्न योनियों में शनै: शनै: प्रवाहित होकर अपने उदभव की दिशा में अग्रसर होने लगा। युगों की दीर्घ अवधि के बाद वह जीव हीनतम योनि के रूप में प्रकट हुआ और उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर योनियों में परिणत हुआ। दीर्घ अंतराल के बाद जीव में मानव तत्व का प्रादुर्भाव हुआ और उस का मनुष्य योनि में जन्म हुआ, जिसमें बुद्धि तत्व की प्रधानता थी। यह आत्म विकास की पहली सीढ़ी है जहां आगे विकास करने पर जीवन सत्दचित में दिव्य रूप को प्राप्त होगा। यह स्थिति साधारण मानव से श्रेष्ठ होगी। विकास को प्राप्त करने की प्रक्रिया को पूर्ण योग की संज्ञा दी जिसमें कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग और राज योग के साथ-साथ तांत्रिक सिद्धांतों का भी समावेश किया।[7.]

अरविंद के योग के दो विशिष्ट लक्षण है।[8.] पहला, वे इस बात पर जोर देते हैं कि योग केवल व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग नहीं है बल्कि सारी मानव जाति के हित के लिए है। पारंपरिक धर्म ने भक्तों को इस सांसारिक जीवन के बंधन से व्यक्तिगत मोक्ष का मार्ग बताया था और आध्यात्मिक दिव्य धाम तक पहुंचाने की दिशा का निर्देशन किया था पर अरविंद दृढ़ता से कहते हैं कि यह आध्यात्मिक अभ्युदय के कठिन मार्ग की केवल एक दिशा यात्रा है। योगी का कर्तव्य है कि वह ऊपर चढ़ने के बाद फिर से नीचे आए ताकि वह जनसाधारण का भी मार्गदर्शन कर सके। इस तरह वे

प्रकृति के कण कण को उन्नति पथ पर प्रवृत्त करने की कामना करते हैं जिससे समस्त भौतिक चेतन का आमूल परिवर्तन हो और इस लोग और परलोक की नई स्थिति की सृष्टि हो। वह प्रकृति और पुरुष में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं । अरविंद जड़ और चेतन को भिन्न नहीं मानते, इसे केवल विकास का भिन्न स्तर मानते हैं। दोनों एक ही सर्व व्यापक सत्ता के दो रूप है। अरविंद इस प्रक्रिया को मंद और कठिन मानते थे। अपने आध्यात्मिक चिंतन में उन्होंने भारत माता को देवी के रूप में चित्रित किया। यह लेख 'वंदे मातरम' में 16 अप्रैल 1907 को प्रकाशित हुआ। लेकिन पुलिस ने उसे जप्त कर लिया वे धर्म को एक शाश्वत धर्म के रूप में देखते थे जिसमें सभी धर्म विज्ञानों और दर्शनों का समावेश हो और जो समग्र मानव जाति को एकात्मक बना दे।

श्री अरविंद ने घोषित किया था यही वह धर्म है जिसे प्राचीन काल से अब तक इस देश ने मानव जाति के हित के लिए संजोकर रखा है। इसी धर्म के प्रचार प्रसार के लिए भारत का अभ्युदय हो रहा है। यह केवल स्वार्थ मात्र के लिए नहीं है बल्कि स्वयं को प्राप्त अनंत प्रकाश को संसार भर में फैलने के लिए किया जा रहा है। भारत हमेशा अपने लिए नहीं बल्कि मानव जाति के लिए जीवित रहा और मानव जाति के लिए ही उसका महान बनना अनिवार्य है, अपने लिए नहीं।[9.]

अरविंद कर्म पर जोर देते थे और संन्यासी बनाकर केवल उपदेश देने को उचित नहीं मानते थे। श्री मोतीलाल राय को एक पत्र में उन्होंने लिखा," तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि मेरा मिशन मठों, तपस्वियों और संन्यासियों का सृजन करना नहीं है बल्कि शक्ति संपन्न लोगों की आत्माओं को कृष्ण और काली की लीलाओं की ओर वापस बुलाना है। बुद्ध के समय से ही वैराग्य के हर आंदोलन ने भारत को और निर्बल करके छोड़ा है। जीवन में वैराग्य एक चीज है, जीवन को स्वयं, राष्ट्रीय और व्यक्तिगत सांसारिक जीवन को ही महानतम और अधिक दिव्या बनाना दूसरी। तुम एक आदर्श को देश पर बिना दूसरों को कमजोर बने थोप नहीं सकते। तुम उत्कृष्टतम आत्माओं को जीवन से बाहर ले जाकर बचे हुए जीवन को अधिक शक्तिशाली और महान नहीं रहने दे सकते। अहम का त्याग और जीवन में ही ईश्वर को स्वीकारना मैं यही योग सिखाता हूं और कोई त्याग नहीं।[10.]

श्री अरविंद भी विवेकानंद की तरह एक ही ईश्वर को मानते हैं और उनका मानना है एक ही देवता को विभिन्न नाम से उच्चारित किया जाता है। वेद भी स्पष्ट कहते हैं 'एकम सद्विप्रा:' एक ही का अस्तित्व है। वे उन आधुनिक विचारकों की आलोचना करते थे जो इन मंत्रों को बाद की उपज मानते थे। उनका मानना था कि वेदों में विज्ञान के अनेक ऐसे तथ्य हैं जो आधुनिक जगत के पास किंचित भी नहीं है सारे वेदों में इस बात की पुष्टि करने वाले मंत्र मिलते हैं कि अग्नि और इंद्र बाकी सभी देवताओं के साथ मंत्र में एक ही रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। अग्नि में स्वत ही सारी दिव्य शक्तियां निहित है। वायु को भी देवता के रूप में वर्णित किया गया है। एक देवता को दूसरे देवताओं के नाम से और साथ ही उसके अपने नाम से भी संबोधित किया गया है। प्राय: इसे ईश और जगतपति का नाम दिया है । उनका मानना था कि वेदों में विज्ञान के अनेक ऐसे तथ्य हैं जो आधुनिक जगत के पास किंचित भी नहीं है।[11.]

अरविंद ने भारतीय अतीत की विलक्षण ऊर्जा, उसके जीवन के आनंद की असीम शक्ति, उसकी कल्पनातीत भरपूर सृजनशीलता को महत्वपूर्ण माना। वे मानते हैं कि कम से कम तीन हजार वर्षों से भारत अपने अंदर ही नहीं वरन बाहर भी सीमाओं का विस्तार करता रहा है। भारतीय कला, संस्कृति, पंथ, और धर्म विश्व के अनेक देशों में फैले और इस भरपूर ऊर्जा और बौद्धिकता के बिना भारत इतना कुछ कभी नहीं कर पाता जितना उसने अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के साथ किया। उनका मानना था कि यह समझना भारी भूल है कि आध्यात्मिकता सबसे

अधिक वहीं पनपती है जहां की भूमि दरिद्र होती है, जीवन अधमरा, बुद्धि हतोत्साहित और भयाक्रांत होती है। ऐसी आध्यात्मिकता विकृत होती है, क्षयग्रस्त होती है और उसे खतरनाक प्रतिक्रियाओं का डर रहता है। जब जाति अत्यंत समृद्धता से रह लेती है और भव्यता के साथ विचार कर लेती है तभी आध्यात्मिकता अपनी ऊंचाइयों और गहराइयों तथा अपने निरंतर तथा बहुमुखी सिद्धि को प्राप्त करती है।[12.]

अरविंद मानते थे कि प्राचीन भारत में समाज का ढांचा धर्म पर आधारित था और प्रत्येक समुदाय अपना धर्म मानने के लिए स्वतंत्र था। भारत का संपूर्ण समुदाय बहुत विशाल था और धर्म पर आधारित समुदाय संस्कृति को किसी ऐसी राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय संगठन में नहीं डाला गया जो बाहरी आक्रमण का सामना करता है।[13.] इसी कारण भारत विभिन्न आक्रांताओं का शिकार रहा। हिंदू - मुस्लिम एकता के बारे में उनका मानना था कि हिंदू- मुस्लिम एकता, हिंदुओं की अधीनता नहीं है कि हर बार हिंदुओं की मृदुता ने खुद को झुका लिया। सबसे अच्छा हाल तो यह होगा कि हिंदुओं को स्वयं को संगठित करने दिया जाए और हिंदू - मुस्लिम एकता अपनी देखरेख स्वयं कर लेगी। इससे समस्या अपने आप हल हो जाएगी।[14.] इस संदर्भ में उनका मानना था कि उस धर्म के साथ ही मिलकर रह सकते हैं जिसका सिद्धांत सहनशीलता हो पर ऐसे धर्म के साथ शांति से कैसे रहना संभव है जिसका सिद्धांत ही यह है कि मैं तुम्हें सहन नहीं करूंगा। निश्चित ही इस आधार पर हिंदू मुस्लिम एकता नहीं आ सकती कि मुसलमान हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करते जाएं जबकि हिंदू किसी मुसलमान का धर्म परिवर्तन नहीं करवाते।[15.]

अरविंद ने भी अन्य भारतीय विचारकों की तरह किसी भी धर्म को पूर्ण नहीं माना। उनका मानना था कि सभी मजहबों में कुछ ना कुछ सत्य है पर किसी में भी संपूर्ण सत्य नहीं है। ईश्वर और सत्य इन मजहबों से आगे रहते हैं और देवी प्रज्ञा जैसा चाहती है उसे तरह से या उस रूप में ही फिर से अपने को प्रकट करते हैं। वे भारतीय अतीत के आधार पर आध्यात्मिक विकास के भविष्य का निर्माण करना चाहते थे।

अरविंद जाति व्यवस्था की व्याख्या भी अलग तरीके से करते हैं। उनका कहना था कि ईश्वर के आगे सभी प्रकार के कार्य समान है और सभी के भीतर इसी ब्रह्म का वास है। यह एक सत्य है पर सब में बराबर का विकास नहीं हुआ, यह दूसरा सत्य है। जन्म का महत्व है पर आधारभूत मूल्य स्वयं मनुष्य में ही उसकी आंतरिक आत्मा में और जिस परिणाम में वह अपने को उसके स्वभाव में प्रकट करती है, उसमें निहित है।[16.] दार्शनिक स्तर पर अरविंद ने भारत के संयासवादी, अद्वैतवादी अनुभवातीत प्रत्यय वाद, और पश्चिम के लौकिक वादी, भौतिकवाद की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय किया। ऐसा उनका मानना था भारतीय आध्यात्मिकता प्राथमिक पार्थिव जीवन के आत्मा के अनुरूप रूपांतरित नहीं हो सकी इसलिए उसने लोगों में संसार को त्यागने की प्रवृत्ति जागृत की और प्राकृतिक जगत की क्षणभंगुरता पर अत्यधिक बल देकर प्राण शक्ति को दुर्बल कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन के शुद्ध लौकिक क्षेत्र में भारत संसार के अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं हो सका। इस दर्शन को लोकप्रिय बनाने का ऐतिहासिक परिणाम यह हुआ की व्यापारिक और राजनीतिक जीवन गर्त में डूब गया। वहीं यूरोप में वैज्ञानिक पद्धति के पूर्ण विकास ने पश्चिम में घोर भौतिकवाद और लौकिकवाद को प्रोत्साहित किया। अरविंद का मानना था कि भारत और यूरोप दोनों ही अति की ओर चले गए। वे मानते थे कि भारतीय अध्यात्मवाद और यूरोप के भौतिक व लौकिकवाद के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है और यह एक ऐसे दर्शन की सृष्टि करने में सक्षम होगा जिसमें पदार्थ और आत्मा दोनों के महत्व को स्वीकार किया जाए। उनका कहना था कि हमें प्राचीन आर्यों की विरासत को सुरक्षित रखने में सावधानी बरतनी होगी चाहे उस विरासत का कितना ही अवमूल्यनत क्यों ना हो गया हो।

श्री अरविंद ने इतिहास में आध्यात्मिक नियतिवाद के सिद्धांत को स्वीकार किया। उनके अनुसार ऊपर से निष्प्रयोजन और प्राय परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के मूल में ईश्वर की शक्तियां ही काम कर रही हैं। इतिहास ब्रह्म की क्रमिक पुनराभिव्यक्ति है। अरविंद काली को परमात्मा की नियामक शक्ति का प्रतीक मानते थे और अपने इस तर्क की पुष्टि में वे बंगाल का राष्ट्रवाद और फ्रांस की क्रांति का उदाहरण देते थे। विपिन चंद्र पाल की भांति उन्हें भी भारतीय पुनरुत्थान के मूल में ईश्वर की इच्छा दिखाई दी और ईश्वर को भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में माना। उनका मानना था कि ब्रिटिश अधिकारी भारतीय जनता का जो दमन, उत्पीड़न और अपमान कर रहे हैं वह भी ईश्वरीय योजना का ही अंग है। इसमें क्रांति करने वाले महापुरुष में ईश्वर का विभूति रूप विशिष्ट अंश होता है। अरविंद घोष ने वैदिक युग को भारतीय इतिहास का प्रतीकात्मक युग बताया और वर्ण व्यवस्था को नकारात्मक सामाजिक संस्था मानते हैं। जाति को परस्पराबद्ध सामाजिक रूप। श्री अरविंद ने बेंथम के उपयोगितावाद की आलोचना की क्योंकि वह नैतिकता से परे गणित पर आधारित स्वार्थ मूलक धारणा है जो अल्पसंख्यकों की अवहेलना करती है। अरविंद सभी प्राणियों के कल्याण को नैतिकता की सर्वोच्च कसौटी मानते हैं। उनके लिए आध्यात्मिक नीति शास्त्र महत्वपूर्ण है। उन्होंने निरपेक्ष दै वी मूल्य की चेतना और वृद्धि पर बल दिया। उनका मानना था की सामाजिक तथा राजनीतिक कलह, टकराव, अंतर विरोध तथा संघर्ष तभी समाप्त हो सकते हैं जब आत्मा में एकात्मक की चेतना जागृत हो। ऐसी चेतना पारस्परिक सहयोग, सामंजस्य और एकता का संवर्धन करेगी। समष्टि तथा व्यक्ति के बीच तालमेल की समस्याएं ऐसी चेतना के उचित होने पर हाल हो सकती हैं जो मनुष्य को बताएगी कि अनुभवातीत ब्रह्मांड तथा व्यक्तिगत पहलू समान रूप से परमात्मा की वास्तविक अभिव्यक्ति है, मनुष्य शाश्वत आत्मा है। वह क्षणभंगुरता के साथ केवल खिलवाड़ करता है। इस प्रकार अरविंद ने मानव प्राणी के अनुभवातीत गुण को अधिक महत्व दिया। उन्होंने आत्मा की शक्ति में विश्वास किया और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का सिद्धांत दिया।

***व्याख्याता**
राजनीति विज्ञान
मास्टर भँवरलाल मेघवाल राजकीय कन्या
महाविद्यालय, सुजानगढ़
चूरू (राज.)

संदर्भ सूची

1. गांगुली, फिलोसफी ऑफ धर्म, वोल्यूम ॥ न.4, 1926, 111-112
2. डॉ० राधाकृष्णन, हिदू व्यू ऑफ लाइफ, अनविन बुक्स, लंदन, 1963, पृष्ठ.54-55
3. सनातन धर्म शताब्दी कोष, सनातन धर्मसभा, भरतपुर, 1966, पृष्ठ 78
4. श्री अरविन्दो, दि ब्रेन ऑफ इंडिया, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता 1923, पृ. 10-11
5. श्री अरविन्दो, दि आइडियल ऑफ कर्मयोगी, आर्य पब्लिशिंग हाऊस, कलकत्ता, 1921, पृ. 6-7
6. श्री अरविंद स्पीचेस, आर्य पब्लिशिंग हाऊस, कलकत्ता 1922, पृ .91
7. डॉ० कर्ण सिंह, भारतीय राष्ट्रीयता के, ग्रंथ विकास, जयपुर, 1999, पृ.73

8. नोट नं., पृ. 7.

9. नोट नं., पृ. 6

10. श्री अरविंद, पश्चिम के खंडहरो में से भारत का पुनर्जन्म, ओरोविले प्रेस, 1995, पृ 113

11. नोट नं. 10, पृ. 124-125

12. नोट नं. 10, पृ. 146-147

13. नोट नं. 10, पृ. 173

14. नोट नं. 10, पृ. 174

15. नोट नं. 10, पृ. 175

16. नोट नं. 10, पृ. 220